

# कजाकी

प्रेमचन्द



# कजाकी पूझ की रात

प्रेमचन्द

आवरण एवं रेखांकन : रामबाबू



अनुराग ट्रस्ट

# किजाकि काह कि रूप

काह कि रूप

प्रकाशक : अनुराग ट्रस्ट, लखनऊ

ISBN 978-81-89719-05-0

मूल्य : 35 रुपये

पहला संस्करण : जनवरी, 2010

प्रकाशक

**अनुराग ट्रस्ट**

डी-68, निरालानगर

लखनऊ-226020

टाइपसेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ





## कजाकी

मेरी बात-स्मृतियों में 'कजाकी' एक न मिटने वाला व्यक्ति है। आज चालीस साल गुज़र गये; कजाकी की मूर्ति अभी तक आंखों के सामने नाच रही है। मैं उन दिनों अपने पिता के साथ आजमगढ़ की एक तहसील में था। कजाकी जाति का पासी था, बड़ा ही हंसमुख, बड़ा ही साहसी, बड़ा ही जिन्दादिल। वह रोज़ शाम को डाक का थैला लेकर आता, रात-भर रहता और सबेरे डाक लेकर चला जाता। शाम को फिर उधर से डाक लेकर आ जाता। मैं दिन भर एक उद्विग्न दशा में उसकी राह देखता रहता। ज्यों ही चार बजते, व्याकुल होकर, सड़क पर आकर, खड़ा हो जाता और थोड़ी देर में कजाकी कंधे पर बल्लम रखे, उसकी झुनझुना बाजा, दूर से दौड़ता हुआ आत दिखलायी देता। वह सांवले रंग गठीला, लम्बा जवान था। शरीर सांचे में ऐसा ढला हुआ कि चतुत मूर्तिकार भी उसमें कोई दोष



न निकाल सकता। उसकी छोटी-छोटी मूँछें, उसकी सुडौल चेहरे पर बहुत ही अच्छी मालूम होती थीं। मुझे देखकर वह और तेज़ दौड़ने लगता, उसकी झुंझुनी और तेज़ी से बजने लगती और मेरे हृदय में और ज़ोर से खुशी की धड़कन होने लगती। हर्षातिरेक में भी दौड़ पड़ता और एक क्षण में कजाकी का कंधा मेरा सिंहासन बन जाता। वह स्थान मेरी अभिलाषाओं का स्वर्ग था। स्वर्ग के निवासियों को भी शायद वह आंदोलित आनंद न मिलता होगा जो मुझे कजाकी के विशाल कंधों पर मिलता था। संसार मेरी आंखों में तुच्छ हो जाता और जब कजाकी मुझे कंधे पर लिये हुए दौड़ने लगता, तब तो ऐसा मालूम होता, मानों मैं हवा के घोड़े पर उड़ा जा रहा हूँ।





कजाकी डाकखाने में पहुंचता, तो पसीने से तर रहता; लेकिन आराम करने की आदत न थी। थैला रखते ही वह हम लोगों को लेकर खेलता, कभी बिरहे गा कर सुनता और कभी कहानियां सुनता। उसे चोरी और डाके, मार-मीट, भूत-प्रेत की सैकड़ों कहानियां याद थीं। मैं ये कहानियां सुनकर विस्मयपूर्ण आनंद में मग्न हो जाता; उसकी कहानियों के चोर और डाकू सच्चे योद्धा होते थे, जो अमीरों को लूट कर दीन-दुखी प्राणियों का पालन करते थे। मुझे उन पर घृणा के बदले सहानुभूति होती।

एक दिन कजाक को डाक थैला लेकर आने में देर हो गयी। सूर्यास्त हो गया और वह दिखलायी न दिया। मैं खोया हुआ-सा सड़क पर दूर तक आंखें फाड़-फाड़ कर देखता था; पर वह परिचित रेखा न दिखलायी पड़ती थी। कान लगाकर सुनता था; 'झुन-झुन' की वह आमोदमय ध्वनि न सुनायी देती थी। प्रकाश के साथ मेरी आशा भी मलिन होती जाती थी। उधर से किसी को आते देखता, तो पूछता-कजाकी आता है? पर या तो कोई सुनता ही न था, या केवल सिर हिला देता था।

सहसा 'झुन-झुन' की आवाज कानों में आयी। मुझे अंधेरे में चारों ओर भूत ही दिखायी देता थे। यहां तक कि माता जी के कमरे में ताकपर रखी हुई मिठाई भी अंधेरा हो जाने के बाद, मेरे लिए त्याज्य हो जाती थी; लेकिन वह आवाज सुनते ही मैं उसकी तरफ ज़ोर से दौड़ा। हां, वह कजाकी ही था। उसे देखते ही मेरी विकलता क्रोध में बदल गयी। मैं उसे मारने लगा, फिर रूठ करके अलग खड़ा हो गया।

कजाकी ने हंस कर कहा-मारोगे, तो मैं एक चीज़ लाया हूं वह न दूंगा।

मैंने साहस करके कहा-जाओं, मत देना मैं लूंगा ही नहीं।

कजाकी-अभी दिखा दूं तो दौड़ कर गोद में उठा लोगे।

मैंने पिघल कर कहा अच्छा, दिखा दो।

कजाकी- तो आकर मेरे कंधे पर बैठ जाओं भाग चलूं। आज बहुत देर हो गयी है। बाबू जी बिगड़ रहे होंगे।

मैंने अकड़ कर कहा-पहिले दिखा।

मेरी विजय हुई। अगर को देर का डर न होता और वह एक मिनट भी और हो सकता, तो शायद पॉसा पलट जाता। उसने कोई जीच दिखलायी, जिसे वह एक हाथ छाती से चिपटाये हुए था; लम्बा मुंह था, और दो आंखें चमक रही थीं।

मैंने उसे दौड़कर कजाकी की गोद से ले लिया। यह हिरन का बच्चा था। आह! मेरी उस खुरी का कौन अनुमान करेगा? तब से कठिन परीक्षाएं पास कीं, अच्छा पद भी पाया,



रायबहादुर भी हुआ, पर वह खुशी फिर न हासिल हुई। मैं उसे गोद में लिए, उसके कोमल स्पर्श का आनंद उठाता घर की ओर दौड़ा। कजाकी को आने में क्यों इतनी देर हुई इसका ख्याल ही न रहा।

मैंने पूछा-यह कहां मिला, कजाकी?

कजाकी-भैया, यहां से थोड़ी दूर पर एक छोटा-सा जंगल है। उसमें बहुत-से हिरन हैं। मेरा बहुत जी चाहता था कि कोई बच्चा मिल जाय, तो तुम्हें दूं। आज यह बच्चा हिरनों के झुंड के साथ दिखलायी दिया। मैं झुंड की ओर दौड़ा, तो सबके सब भागे। यह बच्चा भी भागा; लेकिन मैंने पीछा न छोड़ा और हिरन तो बहुत दूर निकल गये, यही पीछे रह गया। मैंने इसे पकड़ लिया। इसी से इतनी देर हुई।

यों बातें करते हम दोनों डाकखाने पहुंचे। बाबू जी ने मुझे न देखा, हिरन के बच्चे को भी न देखा, कजाकी ही पर उनकी निगाह पड़ी। बिगड़ कर बोले-आज इतनी देर कहां लगायी? अब थैला लेकर आया है, उसे लेकर क्या करू? डाक तो चली गयी। बता, तूने इतनी देर कहां लागयी?

कजाकी के मुंह से आवाज न निकली।

बाबू जी ने कहा-तुझे शायद अब नौकरी नहीं करनी है। नीचे है न, पेट भरा तो मोटा हो गया! जब भूखों मरने लगेगा, तो आंखे खुलेंगी।

कजाकी चुपचाप खड़ा रहा।

बाबू जी का क्रोध और बढ़ा। बोले-अच्छा थैला रख दे और घर की राह ले। सूअर, अब डाक लेके आया है। तेरा क्या बिगड़ेगा, जहां चाहेगा, मजूदी कर लेगा। माथे तो मेरे जायगी, जवाब तो मुझे तलब होगा।

कजाकी ने रुआंसे होकर कहा-सरकार अब कभी देर न होगी।

बाबू जी-आज क्यों देर की, इसका जवाब दें?

कजाकी के पास इसका कोई जवाब न था आश्चर्य तो यह था कि मेरी भी जबान बंद हो गयी। बाबू जी बड़े गुस्सेवर थे। उन्हें काम करना पड़ता था, इसी से बात-बात पर झुंझला पड़ते थे। मैं तो उनके सामने कभी जाता ही न था। वह भी मुझे कभी प्यार न करते थे। घर में केवल दो बार घंटे-घंटे भर के लिए भोजन करने आते थे, बाकी सारे दिन दफ्तर में लिखा करते थे। उन्होंने बार-बार एक सहकारी के लिए अफसरों से विनय की थी; पर इसका कुछ असर न हुआ था। यहां तक कि तातील के दिन भी बाबू जी दफ्तर ही में रहते थे। केवल माता जी उनका क्रोध शांत करना जानती थीं; पर वह दफ्तर



में कैसे आतीं। बेचारा कजाकी उसी वक्त मेर देखते-देखते निकाल दिया गया। उसका बल्लम, चपरास और साफा छीन लिया गया और उसे डाकखाने से निकल जाने का नादिरा हुक्म सुना दिया। आह! उस वक्त मेरा ऐसा जी चाहता था कि मेर पास सोने की लंगा होती, तो कजाकी को दे देता और बाबू जी को दिखा देता कि आपके निकाल देने से कजाकी का बाल भी बांकी नहीं हुआ। किसी योद्धा को अपनी तलवार पर जितना घमंड होता है उतना ही घमंड कजाकी अपनी चपरास पर था। जब वह चपरास खोलने लगा, तो उसकी हाथ कांप रहे थे और आंखे में आंसू बह रहे थे। और इस सारे उपद्रव की जड़ वह कोमल वस्तु थी, जो मेरी गो में मुंह छिपाये ऐसे चैन से बैठी हुई थी, मानों माता की गोद में हो। जब कजाकी चला तो मैं धीरे-धीरे उसके पीछे-पीछे चला। मेरे घर के द्वार आकर कजाकी ने कहा-भैया, अब घर जाओ; सांझ हो गयी।

मैं चुपचाप खड़ा अपने आंसुओं के वेग को सारी शक्ति से दबा रहा था। कजाकी फिर बोला-भैया, मैं कहीं बारह थोड़े ही चला जाऊंगा। फिर आऊंगा और तुम्हें कंधे पर बैठा कर कुदाऊंगा। बाबू जी ने नौकरी ले ली है, तो क्या इतना भी न करने देंगे!

तुमकों छोड़कर मैं कहीं न जाऊंगा, भैया! जाकर अम्मां से कह दो, कजाकी जाता है। उसका का-सुना माफ करें।

मैं दौड़ा हुआ घर गया, लेकिन अम्मां जी से कुछ कहने के बदले बिलख-बिलख कर रोने लगा अम्मां जी रसोई के बाहर निकल कर पूछने लगीं-क्या हुआ बेटा? किसने मारा! बाबू जी ने कुछ कहा है? अच्छा; रह तो जाओ, आज घर आते हैं, पूछती हूं। जब देखों, मेरे लड़के को मारा करते हैं। चुप रहो बेटा, अब तुम उनके पास कभी मत जाना। मैंने बड़ी मुश्किल से आवाज संभाल कर कहा-कजाकी...

अम्मां ने समझा, कजाकी ने मारा है; बोलीं-अच्छा, आने दो कजाकी को देखों, खड़े-खड़े





निकलवा देती हूँ। हरकारा हो मेरे राजा बेटा को मारे! आज ही तो साफा, बल्लम, सब छिनवाये लेती हूँ। वाह!

मैंने जल्दी से कहा-नहीं, कजाकी ने नहीं मारा। बाबू जी ने उसे निकाल दिया है; उसका साफा, बल्लम छीन लिया-चपरास भी ले ली।

अम्मा-ये तुम्हारे बाबू जी ने बहुत बुरा किया। वह बेचारा अपने काम में इतना चौकस रहता है। फिर उसे क्यों निकाला?

मैंने कहा-आज उसे देर हो गयी थी।

यह कहकर मैंने हिरन के बच्चे को गोद से उतार दिया। घर में उसके भाग जाने का भय न था। अब तक अम्मी जी की निगाह भी उस पर न पड़ी थी। उसे फुदकते देखकर वह सहसा चौंक पड़ी और लपक कर मेरा हाथ पकड़ लिया कि कहीं यह भयंकर जीव मुझे काट न खाय! मैं कहां तो फूट-फूटकर रो रहा था और कहां अम्मा की घबराहट देखकर खिलखिलाकर हंस पड़ा।

अम्मां-अरे, यह तो हिरन का बच्चा है! कहां मिला?

हिरन के बच्चे का सारा इतिहास और उसका भीषण परिणाम आदि से अंत तक कह सुनाया-अम्मा, यह इतना तेज भागता था कि कोई दूसरा होता, तो पकड़ ही न सकता। सन्-सन् हवा की तरह उड़ता चला जाता था। कजाकी पांच-छः घंटे तक इसके पीछे दौड़ता रहा। तब कहीं जाकर बचा मिले। अम्मां जी, कजाकी की तरह कोई दुनिया भर में नहीं दौड़ सकता, इसी से तो देर हो गयी। इसीलिए बाबू जी ने बेचारे को निकाल दिया-चपरास, साफा, बल्लेम, सब छीन लिया। अब बेचारा क्या करेगा? भूखों मर जायेगा।

अम्मा ने पूछा-कहां है कजाकी, जरा उसे बुला तो लाओं!

मैंने कहा-बाहर तो खड़ा है। कहता था, अम्मा जी से मेरा कहा-सुना माफ करवा देना।

अब तक अम्मां जी मेरे वृत्तांत को दिल्लगी समझ रही थी। शायद वह समझती थी कि बाबू जी ने कजाकी को डांटा होगा; लेकिन मेरा अन्तिम वाक्य सुनकर संशय हुआ कि सचमुच तो कजाकी को बरखास्त नहीं कर दिया। बाहर आ कर 'कजाकी! कजाकी' पुकारने लगीं, पर कजाकी का कहीं पता न था। मैंने बार-बार पुकारा; लेकिन कजाकी वहां न था।

खाना तो मैंने खा लिया-बच्चे शोक में खाना नहीं छोड़ते, खासकर जब रबड़ी भी सामने हो; मगर बड़ी रात तक पड़े-पड़े सोचता रहा-मेरे पास रुपये होते, तो एक लाख





रुपये कजाकी को दे देता और कहता-बाबू जी से कभी मत बोलना। बेचारा भूखों मर जायेगा। देखूं, कल आता है कि नहीं। अब क्या करेगा आकर? मगर आने को तो कह गया है। मैं कल उसे अपने साथ खाना खिलाऊंगा।

यहीं हवाईय किले बनाते-बनाते मुझे नींद आ गयी।

दूसरे दिन मैं दिन भर अपने हिरन के बच्चे के सेवा-सत्कार में व्यस्थ रहा। पहले उसका नामकरण संस्कार हुआ। 'मुन्नू' नाम रखा गया। फिर मैंने उसका अपने सब महजोलियों और सहपाठियों से परिचय कराया। दिन ही भर में वह मुझसे इतना हिल गया कि मेरे पीछे-पीछे दौड़ने लगा। इतनी ही देर में मैंने उसे अपने जीवन में एक महत्वपूर्ण स्थान दे दिया। अपने भविष्य में बनने वाले विशाल भवन में उसके लिए अलग कमरा बनाने का भी निश्चय कर लिया; चारपाई, सैर करने की फिटन आदि की भी आयोजन कर ली।

लेकिन संध्या होते ही मैं सब कुछ छोड़-छाड़ कर सड़क पर जा खड़ा हुआ और कजाकी की बाट जोहने लगा। जानता था कि कजाकी निकाल दिया गया है, अब उसे यहां आने की कोई जरूरत नहीं रहीं। फिर न-जाने मुझे क्यों यह आशा हो रही थी कि वह आ रहा है। एकाएक मुझ खयाल आया कि कजाकी भूखों मर रहा होगा। मैं तुरन्त घर आया। अम्मां दिया-बत्ती कर रही थीं। मैंने चुपके से एक टोकरी में आटा निकाला, आटा हाथों में लपेटे, टोकरी से गिरते आटे की एक लकीर बनाता हुआ भागा। जाकर सड़क पर खड़ा हुआ ही था कि कजाकी सामने से आता दिखलायी दिया। उसके पास बल्लम भी



था, कमर में चपरास भी थी, सिर पर साफा भी बंधा हुआ था। बल्लम में डाक का भी थैला बंधा हुआ था। मैं दौड़ कर उसकी कमर से चिपट गया और विस्मित होकर बोला-तुम्हें चपरास और बल्लम कहां से मिला गया, कजाकी?

कजाकी ने मुझे उठाकर कंधे पर बैठाते हुए कहा-वह चपरास किस काम की थी, भैया? वह तो गुलामी की चपरास थी, यह पुरानी खुशी की चपरास है। पहले सरकार का नौकर था, अब तुम्हारा नौकर हूँ।

यह कहते-कहते उसकी निगाह टोकरी पर पड़ी, जो वहीं रखी थी। बोला-यह आटा कैसा है, भैया?

मैंने सकुचाते हुए कहा-तुम्हारे ही लिए तो लाया हूँ। तुम भूखे होगे, आज क्या खाया होगा?

कजाकी-आंखें तो मैं न देख सका, उसके कंधे पर बैठा हुआ; हां, उसकी आवाज से मालूम हुआ कि उसका गला भर आया है। बोला-भैया, क्या रूखी ही रोटिया खाऊंगा? दाल, नमक, घी-और तो कुछ नहीं है। मैं अपनी भूल पर बहुत लज्जित हुआ। सच तो है, बेचारा रूखी रोटियां कैसे खाएगा? लेकिन नमक, दाल, घी कैसे लाऊं? अब तो अम्मां चौके में होंगी। आटा लेकर तो किसी तरह भाग आया था (अभी तक मुझे न मालूम था कि मेरी चोरी पकड़ ली गयी; आटे की लकीर ने सुराग दे दिया है) अब ये तीन-तीन चीजें कैसे लाऊंगा? अम्मां से मांगूंगा, तो कभी न देंगी। एक-एक पैसे के लिए तो घंटों रुलाती हैं, इतनी सारी चीजें क्यों देने लगी। एकाएक मुझे एक बात याद आयी। मैंने अपनी किताबों के बस्तों में कई आने पैसे रख छोड़े थे। मुझे पैसे जमा करके रखने में बड़ा आनंद आता था। मालूम नहीं अब वह आदत क्यों बदल गयी। अब भी वहीं हालत होती तो शायद इतना फाकेमस्त न रहता। बाबू जी मुझे प्यार तो कभी न करते थे; पर पैसे खूब देते थे, शायद अपने काम में व्यस्त रहने के कारण, मुझे पिंड छुड़ाने के लिए इसी नुस्खे को सबसे आसान समझते थे। इनकार करने में मेरे रोने और मचलने का भय था। इस बाधा को वह दूर ही से टाल देते थे। अम्मां जी का स्वभाव इससे ठीक प्रतिकूल था। उन्हें मेरे रोने और मनचले से किसी काम में बाधा पड़ने का भय न था। आदमी लेटे-लेटे दिन भर रोना सुन सकता है, हिसाब लगाते हुए जोर की आवाज से ध्यान बंट जाता है। अम्मां मुझे प्यार तो बहुत करती थीं, पर पैसे का नाम सुनते ही उनकी तयोरिया बदल जाती थीं। मेरे पास किताबें न थीं। हां, एक बस्ता था, जिसमें डाकखाने के दो-चार फार्म तह करके पुस्तक के रूप में रखे हुए थे। मैंने सोचा-दाल, नमक और घी के लिए क्या उतने पैसे काफी



न होंगे।? मेरी तो मुट्ठी में नहीं आते। यह निश्चय करके मैंने कहा-अच्छा, मुझे उतार दो, तो मैं दाल और नमक ला दूँ, मगर रोज आया करोगे न?

कजाकी-भैया, खाने को दोगे, तो क्यों न आऊंगा।

मैंने कहा- मैं रोज खाने को दूंगा।

काजाकी बोला-तो मैं रोज आऊंगा

मैं नीचे उतरा और दौड़ कर सारी पूंजी उठा लाया। कजाकी को रोज बुलाने के लिए उस वक्त मेरे पास कोहनूर हीरा भी होता, तो उसकी भेंट करने में मुझे पसोपेश न होता।

कजाकी ने विस्मित होकर पूछा-ये पैसे कहां पाये, भैया?

मैंने गर्व से कहा-मेरे ही तो हैं।

कजाकी-तुम्हारी अम्मां जी तुमकों मारेंगी, कहेंगे-कजाकी ने फुसला कर मंगवा लिये होंगे। भैया, इन पैसों की मिठाई ले लेना और मटके में रख देना। मैं भूखों नहीं मरता। मेरे दो हाथ हैं। मैं भला भूखों मर सकता हूँ?

मैंने बहुत कहा कि पैसे मेरे हैं, लेकिन कजाकी ने न लिए। उसने बड़ी देर तक इधर-उधर की सैर करायी, गीत सुनाये और मुझे घर पहुंचा कर चला गया। मेरे द्वार पर आटे की टोकरी भी रख दी।

मैंने घर में कदम रखा ही था कि अम्मा जी डांटा कर कहा-क्योंकि रे चोर, तू आटा कहा ले गया था? अब चोरी करना सीखता है? बता, किसको आटा दे आया, नहीं तो तेरी खाल उधेड़ कर रख दूंगी।

मेरी नानी मर गयी। अम्मां क्रोध में सिंहनी हो जाती थी। सिटपिटा कर बोला-किसी को तो नहीं दिया।

अम्मां-तूने आटा नहीं निकाल? देख कितना आटा सारे आंगन में बिखरा पड़ा है?

मैं चुप खड़ा था। वह कितना ही धमकाती थीं, चुमकारती भी, पर मेरी जबान न खुलती थी। आने वाली विपत्ति के भय से प्राण सूख रहे थे। यहां तक कि यह भी कहने की हिम्मत न पड़ती थी कि बिगड़ती क्यों हो, आटा तो द्वार पर रखा हुआ है, और न उठा कर लाते ही बनता था, मानो क्रियाशक्ति ही लुप्त हो गयी हो, मानो पैरों में हिलने की सामर्थ्य ही नहीं। सहसा कजाकी ने पुकारी-बहू जी, आटा द्वार पर रखा हुआ है। भैया मुझे देने को ले गये थे।

यह सुनते ही अम्मां द्वार की ओर चली गयी। कजाकी से वह परदा न करती थी। उन्होंने कजाकी से कोई बात की या नहीं, यह तो मैं नहीं जानता; लेकिन अम्मां जी खाली



टोकरी लिये हुए घर में आयी। फिर कोठरी में जाकर संदूरक से कुछ निकाला और द्वारा की ओर गयी। मैंने देखा कि उनकी मुट्ठी बंद थी। अब मुझसे यहां खड़े न रहा गया।

अम्मां जी के पीछे-पीछे मैं भी गया। अम्मा ने द्वारा पर कई पुकारा; मगर कजाकी चला गया।

मैंने बड़ी धीरता से कहा-मैं जाकर खोज लाऊं, अम्मा जी? अम्मां जी ने किवाड़ बंद करते हुए कहा-तुम अंधेरे में कहां जाओगे, अभी तो यहीं खड़ा था। मैंने कहा कि यही रहना; मैं आती हूं। तब तक न जाने कहां खिसक गया। बड़ा संकोची है! आटा तो लेता ही न था। मैंने जबरदस्ती उसके अंगौछे में बांध दिया। मुझे तो बेचारे पर बड़ी दया आती है। न-जाने बेचारे के घर में कुछ खाने को है कि नहीं। रुपये लायी थी कि दे दूंगी, पर न जाने कहां चला गया। अब तो मुझे भी साहस हुआ। मैंने अपनी चोरी की पूरी कथा कह डाली। बच्चों के साथ समझकर बच्चे बनकर मां-बाप उन पर जितना असर डाल सकते हैं, जितनी शिक्षा दे सकते हैं, उतने बूढ़े बनकर नहीं।

अम्मां जी ने कहा-तुमने मुझसे पूछ क्यों न लिया? क्या मैं कजाकी को थोड़ा सा आटा न देती?

मैंने इसका उत्तर न दिया। दिल में कहा-इस वक्त तुम्हें कजाकी पर दया आ गयी है, तो चाहे दे डालो; लेकिन मैं मांगता, तो मारने दौड़तीं। हां, यह सोचकर चित्त प्रसन्न हुआ कि अब कजाकी भूखों न मरेगा। अम्मां जी उसे रोज़ खाने को देंगी और वह रोज़ मुझे कंधो पर बिठाकर सैर करायेगा।

दूसरे दिन मैं दिन भर मुन्नू के साथ खेलता रहा। शाम को सड़क पर जाकर खड़ा हो गया। मगर अंधेरा हो गया और कजाकी का कहीं पता नहीं। दिये जल गये, रास्ते में सन्नाटा छा गया; पर कजाकी न आया!

मैं रोता हुआ घर आया। अम्मां जी ने पूछा क्यों रोते हो, बेटा क्या कजाकी नहीं आया? मैं और जोर से रोने लगा। अम्मां जी ने मुझे छाती से लगा लिया। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि उनका भी कंठ गद्गद् हो गया है।

उन्होंने कहा-बेटा, चुप हो जाओ, मैं कल किसी हरकारे को भेज कर कजाकी को बुलावाऊंगी मैं रोते ही रोते सो गया। सबेरे ज्यों ही आंखे खुली, मैंने अम्मा जी कहा-कजाकी को बुलवा दो।

अम्मा ने कहा-आदमी गया है बेटा! कजाकी आता होगा। खुश हो कर खेलने लगा। मुझे मालूम था कि अम्मां जी जो बात कहती है, उसे पूरा जरूर करती है। उन्होंने सबेरे



ही एक हरकारे को भेज दिया था। दस बजे जब मैं मुन्नु को लिये हुए घर आया, तो मालूम हुआ कि कजाकी अपने घर पर नहीं मिला। वह रात को भी घर न गया था। उसकी स्त्री रो रही थी कि न-जाने कहां चले गये। उसे भय था कि वह कहीं भाग गया है।

बालकों का हृदय कितना कोमल होता है, इसका अनुमान नहीं कर सकता। उनमें अपने भावों को व्यक्त करने के लिए शब्द नहीं होते। उन्हें यह भी ज्ञान नहीं होता कि कौन-सा कांटा उनके हृदय में खटक रहा है, क्योंकि बार-बार उन्हें रोना आता है, क्योंकि वे मन मारे बैठे रहते हैं, क्यों खेलने में जी नहीं लगता? मेरी भी यही दशा थी। कभी घर में आता, कभी बाहर जाता, कभी सड़क पर जा पहुंचता। आंखे कजाकी को ढूँढ रही थी। वह कहां चला गया? कहीं भाग तो नहीं गया?

तीसरे पहर को मैं खोया-सा सड़क पर खड़ा था। सहसा मैंने कजाकी को एक गली में देखा। हां, वह कजाकी ही था। मैंने उसकी ओर चिल्लाता हुआ दौड़ा; पर गली में उसका पता न था, न-जाने किधर गायब हो गया। मैंने गली के इस सिरे से उस सिरे तक देखा; मगर कहीं कजाकी की गंध तक न मिली।

घर जाकर मैंने अम्मा जी से यह बात कहीं। मुझे ऐसा जान पड़ा कि वह यह बात सुनकर बहुत चिन्तित हो गयी।

इसके बाद दो-तीन दिन तक कजाकी न दिखलायी दिया। मैं भी अब उसे कुछ-कुछ भूलने लगा। बच्चे पहले जितना प्रेम करते हैं, बाद को उतने ही निष्ठुर भी हो जाते हैं। जिस खिलौने पर प्राण देते हैं, उसी को दो-चार दिन के बाद पटककर फोड़ भी डालते हैं।





दस-बाहर दिन और बीच गये। दोपहर का समय था। बाबू जी खाना खा रहे थे। मैं मुन्नू के पैरों में पीनस की पैजानियां बांध रहा था। एक और घूँघट निकाले हुए आयी और आंगन में खड़ी हो गयी। उसके कपड़े फटे हुए और मैले थे, पर गोरी, सुन्दर स्त्री थी। उसने मुझसे पूछा-भैया, बहू जी कहां है?

मैंने उसके पास जाकर उसका मुंह देखते हुए कहा-तुम कौन हो, क्या बेचती हो? औरत-कुछ बेचती नहीं हूं तुम्हारे लिए ये कमलगट्टे लायी हूं। भैया, तुम्हें तो कमलगट्टे बहुत अच्छे लगते हैं न?

मैंने उसके हाथों से लटकती हुई पोटली को उत्सुक नेत्रों से देखकर पूछा-कहां से लायी हो? देखें।

औरत-तुम्हारे हरकारे ने भेजा है, भैया!

मैंने उछल कर पूछा-कजाकी ने?

औरत ने सिर हिलाकर 'हां' और पोटली खोलने लगी। इतने में अम्मां जी भी रसोई से निकल आयीं। उसने अम्मां के पैरों का स्पर्श किया। अम्मां ने पूछा-तू कजाकी की घरवाली है?

औरत ने सिर झुका लिया।

अम्मां आजकल कजाकी क्या करता है?

औरत ने रो कर कहा-बहू जो, जिस दिन से आपके पास आटा लेकर गये हैं, उसी दिन से बीमार पड़े हैं। बस, भैया-भैया किया करते हैं। भैया ही में उनका मन बसा रहता है। चौंक-चौंककर भैया!भैया! कहते हुए द्वार की ओर दौड़ते हैं। न जाने उन्हें क्या हो गया है, बहू जी! एक दिन मुझसे कुछ कहा न सुना, घर से चल दिये और एक गली से छिप कर भैया को देखते रहे। जब भैया ने उन्हें देख लिया, तो भागे। तुम्हारे पास आते हुए लजाते हैं।

मैंने कहा-हां-हां, मैंने उस दिन तुमसे जो कहा था अम्मां जी!

औरत- हां बहू जी, तुम्हारे आसिरवाद से खाने-पीने को दुःख नहीं है। आज सबरे उठे और तालाब की ओर चले गये। बहुत कहती रही, बाहर मत जाओ, हवा लग जाएगी। मगर न माना। मारे कमजोरी के पैर कांपने लगते हैं, मगर तालाब में घुस कर ये कमलगट्टे तोड़ लाये। तब मुझसे कहा-ले जा भैया को दे आ। उन्हें कमलगट्टे बहुत अच्छे लगते हैं। कुशल-क्षेम पूछती आना।

मैंने पोटली से कमलगट्टे निकाल लिये थे और मजे से चख रहा था। अम्मा ने बहुत



आंखे दिखायीं, मगर यहां इतनी सब्र कहां!

अम्मा ने कहा-कह देना सब कुशल है।

मैंने कहा-यह भी कह देना कि भैया ने बुलाया है। न जाओगे तो फिर तुमसे कभी न बोलेंगे, हां!

बाबू जी खाना खाकर निकल आये थे। तौलिये से हाथ मुंह पोंछते हुए बोले-और यह भी कह देना कि साहब ने तुमको बहाल कर दिया है। जल्दी जाओ, नहीं तो कोई दूसरा आदमी रख लिया जायेगा।

औरत ने अपना कपड़ा उठाया और चली गयी। अम्मां ने बहुत पुकारा, पर वह न रुकी। शायद अम्मां जी उसे सीधा देना चाहती थीं।

अम्मां ने पूछा-सचमुच बहाल हो गया?

बाबू जी-और क्या झूठे ही बुला रहा हूं। मैंने तो पांचवें ही दिन बहाली की रिपोर्ट की थी।

अम्मा-यह तुमने अच्छा किया।

बाबू जी-उसकी बीमारी की यही दवा है।

प्रातःकाल मैं उठा, तो क्या देखता हूं कि कजाकी लाठी टेकता हुआ चला आ रहा है। वह बहुत दुबला हो गया था, मालूम होता था, बूढ़ा हो गया है। हरा-भरा पेड़ सूख कर टूट हो गया था। मैं उसकी ओर दौड़ और उसकी कमर से चिपट गया। कजाकी ने मेरे गाल चूमे और मुझे उठा कर कंधो पर बैठालने की चेष्टा करने लगा; पर मैं न उठ सका। तब वह जानवनों की भांति भूमि पर हाथों और घुटनों के बल खड़ा हो गया और मैं उसकी पीछ पर सवार होकर डाकखाने की ओर





मुन्नी उसके पास से दूर हट गई और आँखें तरेरती हुई बोली- कर चुके दूसरा उपाय! ज़रा सुनूँ कौन उपाय करोगे? कोई खैरात दे देगा कम्मल? न जाने कितनी बाकी है जो किसी तरह चुकने ही नहीं आती। मैं कहती हूँ, तुम क्यों नहीं खेती छोड़ देते? मर-मर काम करो, उपज हो तो बाकी दे दो, चलो छुट्टी हुई। बाकी चुकाने के लिए ही तो हमारा जनम हुआ है। पेट के लिए मजूरी करो। ऐसा खेती से बाज आए। मैं रुपए न दूँगी-न-दूँगी।

हल्कू उदास होकर बोला-तो क्या गाली खाऊँ।

मुन्नी ने तड़पकर कहा-गाली क्यों देगा, क्या उसका राज है?

मगर यह कहने के साथ ही तनी हुई भौंहें ढीली पड़ गई। हल्कू के उस वाक्य में जो कठोर सत्य था, वह मानो एक भीषण जन्तु की भाँति घूर रहा था।

उसने जाकर आले पर से रुपए निकाले और लाकर हल्कू के हाथ पर रख दिए। फिर बोली-तुम छोड़ दो अबकी से खेती। मजदूरी में सुख से एक रोटी खाने को तो मिलेगी। किसी की धौंस तो न रहेगी। अच्छी खेती है! मजूरी करके लाओ, वह उसी में झाँक दो, उस पर से धौंस।

हल्कू ने रुपए लिए और इस तरह बाहर चला मानो अपना हृदय निकालकर देने जा रहा हो। उसने मजूरी से एक-एक पैसा काट-कपटकर तीन रुपए कम्मल के लिए जमा किए थे। वह आज निकले जा रहे थे। एक-एक पग के साथ उसका मस्तक अपनी दीनता के भार से दबा जा रहा था।

## 2

पूसी की अँधेरी रात! आकाश पर तारे भी ठिठरते हुए मालूम होते थे। हल्कू अपने खेत के किनारे ऊख के पत्तों की एक छतरी के नीचे बाँस के खटोले पर अपनी पुरानी गाढ़े की चादर ओढ़े काँप रहा था। खाट के नीचे उसकी संगी कुत्ता जबराम पेट में मुँह डाले सर्दी से कूँ-कूँ कर रहा था। दो में से एक को भी नींद न आती थी।

हल्कू ने घुटनियों को गर्दन में चिपकाते हुए कहा-क्यों जबराम, जाड़ा लगता है? कहता तो था, घर में पुआल पर लेट रह, तो यहाँ क्या लेने आए थे। अब खाओं ठंड, मैं क्या करूँ। जानते थे, मैं यहाँ हलवा-पूरी खाने आ रहा हूँ, दौड़े-दौड़ आगे-आगे चले आए। अब रोओ नानी के नाम को। जबराम ने पड़े-पड़े दुम हिलाई और अपनी कूँ-कूँ को दीर्घ बनाता हुआ एक बार जम्हाई लेकर चुप हो गया। उसकी श्वान-बुद्धि





ने शायद ताड़ लिया, स्वामी को मेरी कूँ-कूँ से नींच नहीं आ रही है।

हल्कू ने हाथ निकालकर जबरा की ठंडी पीठ सहलाते हुए कहा-कल से मत आना मेरे साथ, नहीं तो ठंडे हो जाओगे। यह राँड पछुआ न जाने कहाँ से बर्फ लिए आ रही है। उठूँ, फिर एक चिलम भरूँ। किसी तरह रात कटे! आठ चिलम तो पी चुका। यह खेती का मजा है! और एक-एक भगवान ऐसे पड़े हैं, जिनके पास जाड़ा

जाए तो गर्मी से घबराकर भागे! मोटे-मोटे गद्दे, लिहाफ-कम्मल। मजाल है जाड़े का गुजर हो जाए। तकदीर की खूबी है! मजदूरी हम करें, मजा दूसरे लूटें!

हल्कू उठा और गड्ढे में से ज़रा-सी आग निकालकर चिलम पीते हुए कहा, पिएगा चिलम, जाड़ा तो क्या जाता है, हाँ ज़रा मन बहल जाता है। जबरा ने उसके मुँह की ओर प्रेम से छलकती हुई आँखों से देखा।

हल्कू-आज और जाड़ा खा ले। कल से मैं यहाँ पुआल बिछा दूँगा। उसी से घुसकर बैठना, तब जाड़ा न लगेगा।

जबरा ने अगले पंजे उसकी घुटनियों पर रखा दिए और उसके मुँह के पास अपना मुँह ले गया। हल्कू को उसकी गर्म साँस लगी।

चिलम पीकर हल्कू फिर लेटा और निश्चय करके लेटा कि चाहे कुछ हो अबकी सो जाऊँगा, पर एक ही क्षण में उसके हृदय में कंपन होने लगा कभी इस करवट लेता, कभी उस करवट; पर जाड़ा किसी पिशाच की भाँति उसकी छांती को दबाए हुए था।

जब की तरह न रहा गया तो उसने जबरा को सीरे-से उठाया और उसके सिर को थपथपाकर उसे अपनी गोद में सुला लिया। कुत्ते की देह से जाने कैसी दुर्गंध आ रही थी, पर वह उसे अपनी गोद से चिपटाए हुए ऐसे सुख का अनुभव कर रहा था,



जो इधर महीनों से उसे न मिला था। जबरा शायद समझ रहा था कि स्वर्ग यही है; और हल्कू की पवित्र आत्मा में तो उसे कुत्ते के प्रति घृणा की गन्ध तक न थी! अपने किसी अभिन्न मित्र या भाई को भी वह इतनी ही तत्परता से गले लगाता। वह अपनी दीनता से आहत न था, जिसने आज उसे इस दशा को पहुँचा दिया! यहीं, इस अनोखी मैत्री ने जैसे उसकी एक-एक अणु प्रकाश से चमक रहा था।

सहसा जबरा ने किसी जानवर की आहट पाई। इस विशेष आत्मीयता ने उसमें एक नई स्फूर्ति पैदा कर दी थी, जो हवा के ठंडे झोकों को तुच्छ समझती थी। वह झपटकर उठा और छतरी के बाहर आकर भूँकने लगा। हल्कू ने उसे कई बार चुपकारकर बुलाया; पर वह उसके पास न आया। हार में चारों तरफ दौड़-दौड़कर भूँकता रहा। एक क्षण के लिए आ भी जाता तो तुरन्त ही फिर दौड़ता। कर्तव्य उसके हृदय में अरमान की भाँति उछल रहा था।

### 3

एक घंटा और गुजर गया। रात ने शीत को हवा से धधकाना शुरू किया। हल्कू उठ बैठा और दोनों घुटनों को छाती से मिलाकर सिर को उसमें छिपा लिया। फिर भी ठंड कम न हुई। ऐसा जान पड़ता था, सारा रक्त जम गया है, धमनियों में रक्त की जगह हिम बह रहा है। उसने झुककर आकाश की ओर देखा, अभी कितनी रात बाकी है। सप्तर्षि अभी आकाश में आधे भी नहीं चढ़े। ऊपर आ जाएँगे तब कहीं सबेरा होगा। अभी पहर भर से ऊपर रात है।

हल्कू के खेत से कोई एक गोली के टप्पे पर आमों का एक बाग था। पतझड़ शुरू हो गई थी। बाग में पत्तियों का ढेर लगा हुआ था। हल्कू ने सोचा, चलकर पत्तियाँ बटोरू और उन्हें जलाकर खूब तापूँ। रात को कोई मुझे पत्तिया बटोरते देख, तो समझे कोई भूत है। कौन जाने कोई जानवर ही छिपा बैठा हो; मगर अब तो बैठे नहीं रह जाता।

उसने पास के अरहर के खेत में जाकर कई पौधे उखाड़ लिए और उनका एक झाड़ू बनाकर हाथ में सुलगता हुआ उपला लिए बगीचे की तरफ चला। जबरा ने उसे जाते देखा, तो पास आया और दुम हिलाने लगा।

हल्कू ने कहा - अब तो नहीं रहा जाता जबरु! चलो बगीचे में पत्तियाँ बटोरकर तापें। टाँठे हो जाएँगे, तो फिर आकर सोएँगे। अभी तो रात बहुत है।





जबरा ने कूँ-कूँ करके सहमत प्रकट किया और आगे-आगे बगीचे की ओर चला।

बगीचे में घुप अँधेरा हुआ था और अंधकार में निर्दय पवन पत्तियों को कुचलता हुआ चला जाता था। वृक्षों से ओस की बूँदें टप-टप नीचे टपक रही थीं।

एकाएक एक झोंका मेंहदी के फूलों के की खुशबू लिए हुए आया। हल्कू ने कहा-कैसी अच्छी महक आई जबरू! तुम्हारी नाक में भी

कुछ सुगंध आ रही है?

जबरा को कहीं जमीन पर एक हड्डी पड़ी मिल गई थी। उसे चिंचोड़ रहा था। हल्कू ने आग जमीन पर रख दी और पत्तियाँ बटोरने लगा। ज़रा देर में पत्तियों का एक ढेर लगा गया। हाथ ठिठुरे जाते थे। नंगे पाँव गले जाते थे। और वह पत्तियों का पहाड़ खड़ा कर रहा था। इसी अलाव में वह ठंड को जलाकर भस्म कर देगा।

थोड़ी देर में अलाव में जल उठा। उसकी लौ ऊपरवाले वृक्ष की पत्तियों को छू-छूकर भागने लगी। उस अस्थिर प्रकाश में बगीचे के विशाल वृक्ष ऐसे मालूम होते थे, मानो उस अथाह अंधकार को अपने सिरों पर सँभाले हुए हो। अंधकार के उस अनन्त सागर में यह प्रकाश एक नौका के समान हिलता, मचलता हुआ जान पड़ता था।

हल्कू अलाव के सामने बैठा आग ताप रहा था। एक क्षण में उसने दोहर उतारकर बलग में दबा ली और दोनों पाँव फैला दिए, मानों ठंड को ललकार रहा हो, 'तेरे जी में जो आए सो कर'। ठंड की असीम शक्ति पर विजय पाकर वह विजय-गर्व को



हृदय में छिपा न सकता था।

उसने जबरा से कहा-क्यों जब्बर, अब ठंड नहीं लग रही है?

जब्बर ने कूँ-कूँ करके मानों कहा-अब क्या ठंड लगती ही रहेगी!

पहले से यह उपाय न सूझी, नहीं इतनी ठंड क्यों खाते।

जब्बर ने पूँछ हिलाई।

‘अच्छा आओं इस अलाव को कूदकर पार करें। देखें, कौन निकल जाता है। अगर जब गए बचा, तो मैं दवा न करूँगा।’

जब्बर ने उस अग्निराशि की ओर कातर नेत्रों से देखा।

यह कहता हुआ वह उछला और उस अलाव के ऊपर से साफ निकल गया। पैरों में ज़रा लपट लगी; परवह कोई बात न थी। जबरा आग के गिर्द-घूमकर उसके पास आ खड़ा हुआ।

हल्कू ने कहा-चलो-चलो, इसकी सही नहीं। ऊपर से कूदकर आओं। वह फिर कूदा और अलाव के इस पार आ गया।

4

पत्तियाँ जल चुकी थीं बगीचे में फिर अंधेरा छाया था। राख के नीचे कुछ-कुछ आग बाकी थी, जो हवा का झोंका आ जाने पर ज़रा जाग उठती थी; पर एक क्षण में फिर आँखें बंद कर लेती थी।

हल्कू ने फिर चादर ओढ़ ली और गर्म राख के पास बैठा हुआ एक गीत गुनगुनाने





लगा। उसके बदन में गर्मी आ गई; पर ज्यों-ज्यों शीत बढ़ती जाती थी, उसे आलस्य दबाए लेता था।

जबरा जोर से भूँककर खेत की ओर भागा। हल्कू को ऐसा मालूम हुआ कि जानवरों का एक झुंड उके खेत में आया है। शायद नील गायों का झुंड था। उसके कूदने-दौड़ने की आवाजे साफ कान में आ रही थी। फिर ऐसा मालूम हुआ कि वह खेत में चर रही हैं। उनके चबाने की आवाज चर-चर सुनाई देने लगी।

उसने दिल में कहा- नहीं, जबरा के होते हुए कोई जानवर खेत में नहीं आ सकता। नोच ही डाले। मुझे भ्रम हो रहा है। कहाँ! अब तो कुछ नहीं सुनाई देता! मुझे भी कैसा धोखा हुआ!

उसने जोर से आवाज लगाई-जबरा, जबरा।

जबरा भूँकता रहा। उसके पास न आया।

फिर खेत चरे जाने की आहट मिली। अब वह अपने को धोखा न दे सका। उसे अपनी जगह से हिलना जहर लग रहा था। कैसा दंदाया हुआ बैठा था। इस जाड़े-पाले में खेत में जाना, जानवरों के पीछे दौड़ना असूझ जान पड़ा। वह अपनी जगह से हिला

उसने जो से आवाज लगाई- लिहो-लिहो!  
लिहा!

जबरा भूँक उठा। जानवर खेत चर रहे थे।





फसल तैयार है। कैसी अच्छी खेती थी; पर ये दुष्ट जानवर उसका सर्वनाश किए डालते हैं।

हल्कू पक्का दरादा करके उठा और दो तीन कदम चला: पर एकाएक हवा का ऐसा ठंडा, चुभनेवाला, बिच्छु के डंक का-सा झोंका लगा कि वह फिर कुरेदकर अपनी ठंडी देह को गर्माने लगा।

जबरा अपना गला फाड़े डालता था, नीलगायें खेत का सफाया किए डालती थीं। और हल्कू गर्म राख के पास शान्त बैठा हुआ था। अकर्मण्यता ने रस्सियों की भाँति उसे चारों तरफ से जकड़ रखा था।

उसी राख के पास गर्म जमीन परवह चादर ओढ़कर सो गया।

सबरे जब उसकी नींच खुली, तब चारों तरफ धूप फैल गई थी। और मुन्नी कह रही थी-क्या आज सोते ही रहोगे? तुम यहाँ आकर रम गए और उधर सारा खेत चौपट हो गया। हल्कू ने उठकर कहा-क्या तू खेत से होकर आ रही है?

मुन्नी बोली - हाँ, सारे खेत का सत्यानाश हो गया। भला ऐसा भी कोई सोता है! तुम्हारे यहाँ मड़ैया डालने से क्या हुआ?

हल्कू ने बहाना किया-मैं मरते-मरते बचा, तुझे अपने खेत की पड़ी है। पेट में ऐसा दरद हुआ, ऐसा दरद हुआ कि मैं ही जानता हूँ।

दोनों फिर खेत की डाँड पर आए। देखा, सारा खेत रौंदा पड़ा हुआ है, और जबरा मड़ैया के नीचे चिट लेटा है; मानो प्राण ही न हों।

दोनों खेत की दशा देख रहे थे। मुन्नी के मुख पर उदासी छाई थी। पर हल्कू प्रसन्न था।

मुन्नी ने चिन्तित होकर कहा- अब मजूरी करके मालगुजारी भरनी पड़ेगी।

हल्कू ने प्रसन्न-मुख से कहा-रात की ठंड में यहाँ सोना तो न पड़ेगा।





अनुराग ट्रस्ट